बाजितपुर में भोलानाथ की कालीपूजा

दीदी ने आगे कहा कि बाजितपुर की कालीपूजा के बारे में जो विवरण हम लोगों ने श्रीयुक्त भूदेव बसु महाशय के निकट से प्राप्त किया था, वह निमूल नहीं है। इस बार आसाम यात्रा के समय श्री श्री माँ से उक्त घटना के बारे में जान चुकी हूँ। वह घटना यों हैं – बाबा भोलानाथ ने बाजितपुर में रहते समय दीपावली के उपलक्ष्य में कालीपूजा का आयोजन किया। यह पूजा उनके वंश की सालाना कालीपूजा थी। इस पूजा के भोग के लिए जो चावल काम में लाया जाता था, उसे खूब शुद्ध भाव से तैयार किया जाता था। इस बार भी पूजा के लिए जो चावल तैयार किया गया, उसे कौवे ने जूठा कर दिया। फलतः उसे उठाकर रख दिया गया। बादमें नये चावल से भोग तैयार किया गया। इस पूजा का भोग माँ स्वयं नहीं बना सकी थीं। पड़ोस की एक महिला ने उसे बनाया था । जब वे भोग बनाकर चली गयी तब माँ रसोईघर के सामने एक लाठी लेकर कुत्ते–बिल्लियों को भगाने के लिए बैठ गयी। इस तरह बैठे–बैठे माँ ने देखा कि एक गौर कान्ति ब्राह्मण श्री श्री माँ के दाहिने अंग को रगड़ता हुआ घर के भीतर चल गया ओर भोग के लिए जो अन्न थाली में परोसकर रखा गया था, उसमें से अन्न ग्रहण करके चला गया। इधर पूजा समाप्त करने के बाद भोलानाथ भोग लेकर जब देवी के निकट जा रहे थे तब न जाने कहाँ से एक प्रकाण्ड शरीर वाला कुत्ता आया और भोलानाथ के हाथ के भोग को जूठा करके चला गया। एक आम के पेड़ के नीचे उक्त भोग को भोलानाथ ने रख दिया और फिर स्नान कर वापस आ गये। बाद में कौवे द्वारा किये गये जूठे चावलों से भोग बनाकर देवी को भोग दिया गया। खुकुनी दीदी को माँ ने यह कहानी सुनायी थी।

माँ ने कहा था – 'भोलानाथ की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। प्रत्येक बार सामान्य आयोजन करते थे, पर कितने लोग प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं, इस ओर कभी भोलानाथ ने ध्यान नहीं दिया ।'

दुश्चरित्र नौकर का परिणाम

बाजितपुर में हुई एक और घटना का विवरण श्री श्री माँ के निकट सुना। इस घटना के बारे में इसके पहले भूदेव से भी सुन चुका हूँ। वह घटना यों है–

सन् १३३५ फ० में श्रीयुक्त भूदेव चन्द्र बसु महाशय ढाका के नवाब के स्टेट के सहायक मेनेजर बनकर बाजितपुर गये। उन दिनों भोलानाथ भी बाजितपुर में नवाब के स्टेट में नौकरी करते रहे । भूदेव बाबू का अंगरक्षक शशि नामक एक नौकर था। वह बड़ा चरित्रहीन था। लेकिन यह बात कोई नहीं जानता था। अपने वधू–जीवन में माँ ब्राह्म मुहूर्त में उठकर आंगन में गोबर–पानी छिड़कती थी और घर–गृहस्थी के कार्य सूर्योदय के पूर्व प्रारम्भ कर देती थीं। इस समय अधिकांश शय्यात्याग नहीं करते थे। फलतः माँ अकेली रहती थीं। एक दिन माँ शय्यात्याग कर आंगन में गोबर–पानी छिड़क रही थीं, ठीक इसी समय उक्त शशि नामक नौकर दुरभिसंधि लेकर पीछे से माँ के आंचल को पकड़ा। ज्योंही उसने आंचल स्पर्श किया त्यों ही गों–गों आवाज करता हुआ वह जमीन पर गिर कर बेहोश हो गया। उसकी यह दशा देखकर माँ ने भोलानाथ को सूचना दी। बाबा भोलानाथ आकर उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगे। कुछ देर बाद वह होश में जरूर आ गया, पर स्वाभाविक अवस्था में नहीं आ सका। हमेशा के लिए उन्मादग्रस्त हो गया।

भोजन के बाद आज तीसरे पहर गंगा की ओर हम लोग घूमने गये। नित्य की तरह तीन–चार नाव एक में बाँधकर गंगा की धारा में चलने लगे। माँ को देखने के लिए किनारे–किनारे अगणित व्यक्ति

खड़े थे। इन लोगों को दर्शन देने के लिए नावों को किनारे की ओर लाया गया। तीसरे पहर नदी वक्ष पर जाड़ा–सा लग रहा था। नावों को पश्चिम दिशा की ओर बढ़ाने के लिए माँ ने कहा। उस समय थोड़ी धूप थी। माँ ने कहा कि पश्चिम की ओर चलने पर सभी के शरीर पर धूप लगेगी और इससे जाड़ा कम लगेगा।

शाम के वक्त हम लोग धर्मशाले में वापस आ गये। आज माँ से मिलने के लिए दो–तीन बाबाजी आये हैं। इन लोगों ने माँ से दो चार प्रश्न पूछा।

बाबाजी – सगुण, निर्गुण एवं निर्वाण किसे कहते हैं?

माँ – पिताजी, आपलोग कहिये। मैं क्या जानती हूँ?

बाबाजी – माँ, हमलोग तुमसे सुनने आये हैं।

माँ – तुम लोग चर्चा चलाओ। बातचीत में मैं भी भाग लूँगी।

बाबाजी लोग स्वयं ही सगुण की व्याख्या करने लगे। उनकी बात समाप्त होते ही माँ ने कहा – "पिताजी, आप लोगों ने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही दिया। स्वभाव के गुण को ही सगुण कहते हैं।"

प्रथम बाबाजी – निर्वाण किसे कहते हैं?

माँ – पिताजी, आप लोग बताइये।

प्रथम बाबाजी – अहं ज्ञान का लोप जाने पर जो स्थिति होती है, वही निर्वाण की स्थिति है।

द्वितीय बाबाजी – दवा पीकर भी अहं ज्ञान लोप किया जा सकता है। क्या वह निर्वाण होगा?

प्रथम बाबाजी – तुम क्या कहना चाहते हो?

द्वितीय बाबाजी–मेरा कहना यह है कि निर्वाण का अर्थ है – मिल जाना। जैसे एक गिलास पानी नदी में डाल देने पर वह मिल जाता है। निर्वाण में भी उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में मिल जाता है।

द्वितीय बाबाजी की बातों का प्रतिवाद न करके कुछ हद तक समर्थन किया। यह देखकर प्रथम बाबाजी ने कहा – "जीवात्मा अगर परमात्मा में मिल जाता है तो कृपा का स्थान कहाँ है?"

माँ – जबतक कर्म है, तुम में ज्ञान है तब तक कृपा है। बाद में मिल जाने पर कौन किस पर कृपा करेगा?

बाबाजी – भक्ति कैसे प्राप्त होती है?

माँ – भक्ति–ज्ञान कहने पर आमतौर पर हम जो समझते हैं, उसके अलावा भी विशुद्ध भक्ति–ज्ञान है। विशुद्ध भक्ति और विशुद्ध ज्ञान ही वास्तविक भक्ति ज्ञान हैं। इसे प्राप्त करने के लिए हमारे पास जो कुछ है, उसी को लेकर कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। गुरु ने जिस मार्ग पर चलने का आदेश दिया है, उसी मार्ग पर चलना चाहिए। इस प्रकार कर्म करते–करते विशुद्ध ज्ञान और भक्ति प्राप्त होती है।

इसी समय जलपान के लिए माँ को भीतर ले जाया गया। बाबाजी लोग विदा लेकर चले गये।

कृष्णवेश में माँ

हम लोग कमरे में बातचीत करने लगे। कुछ देर व्यतीत हो जाने के बाद खुकुनी दीदी ने आकर त्रिगुण बाबू और मुझे बुलाकर कहा – "माँ को फूलों से सजाया गया है। आप लोग जाकर देख आइये।"

दीदी की बात सुनकर जिस कमरे में माँ को सजाया जा रहा था, उस कमरे में हम लोग गये। छोटा–सा कमरा जिसमें बहुत–से लोग थे। अत्यन्त कठिनाई से भीतर जाकर देखा कि माँ को फूलों से शृंगार कर श्रीकृष्ण जैसा बनाया गया है। माथे पर चूड़ा बनाकर लगाया गया है। हाथों में फूलों की चूड़ियाँ, बाजूबन्द, गले में हार, सब फूलों का है। विमला माँ को राधा के रूप में शृंगार कर उनकी बगल में बैठाया गया है। उनके गले में भी माला पहनायी गयी है। लड़कियाँ मधुर कण्ठ

से भजन गा रही हैं। अवनी बाबू तो आनन्द से आत्महारा होकर नृत्य कर रहे हैं। माँ मृदु-मृदु मुस्कुरा रही हैं और तिरछी नजर से विमला माँ की ओर देख रही हैं। उनकी नजर भी बहुत सुन्दर है। भजन की तालों पर शरीर हिला रही हैं। माँ का यह रूप देखकर उन्हें रमणी हैं, मालूम नहीं पड़ रहा था। लग रहा था जैसे वृन्दावन के कृष्ण भुवनमोहनी रूप में आज नवद्वीप में अवतरित हुए हैं। माँ की आकृति से स्निग्ध ज्योति जैसे छिटक रही थी। श्री श्री माँ के इस दिव्य ज्योति रूप को देखकर तथा भक्तों द्वारा आत्महारा होकर गाते देख, मैं अपने को मर्त्यलोकवासी नहीं समझ पा रहा था। तन्मय होकर इस रूप को देखता रहा। हृदय के अन्तःस्थल से एक अनिर्वचनीय आनन्द उत्स मानों सम्पूर्ण शरीर को तरंगित करता रहा। कितनी देर इस तरह व्यतीत हो गया, पता नहीं लगा। अचानक बाहर नजर गयी। देखा – बेबी दीदी इस कमरे में आने के लिए निष्फल प्रयास करने के बाद बाहर चहलकदमी कर रही हैं। दरवाजे के पास पुरुषों की इतनी सख्त भीड़ थी कि उसे पार करके यहाँ तक वे किसी सूरत में नहीं आ सकती थीं। बेबी दीदी को इस प्रकार असहाय अवस्था में देख मेरे मन में करुणा उत्पन्न हुई। सभी लोग माँ का दिव्य रूप देख रहे हैं और बेबी दीदी नहीं देख पायेंगी? यह सोचकर मैंने अत्यन्त कठिनाई से थोड़ी जगह बनाकर बेबी दीदी को बुलाकर भीतर आने को कहा।

उन्हें ऊहापोह करते देख मैंने कहा – "दीदी इस वक्त लज्जा करने की कोई जरूरत नहीं है। चले आइये।"

अब बेबी दीदी संकोच को त्याग कर भीतर चली आई। कुछ देर भजन कीर्तन के बाद माँ ने फूलों का शृंङ्गार खोल दिया। सभी का मोह जैसे एकाएक भंग हो गया। इसके बाद हम लोग कमरे में आकर बैठ गये। मां भी आयी। माँ को काफी देर तक अनुपस्थित देखकर काफी लोग चले गये थे। केवल दो-चार लोग बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऋषि प्रणीत स्तोत्र एवं गीता माहात्म्य पाठ

अवनी बाबू ने आद्यास्तोत्र पाठ किया। यह समाप्त होने पर श्री श्री माँ से अनुमति लेकर श्रीयुक्त गणेशचंद्र सेन महाशय रचित कुछ संस्कृत श्लोकों का पाठ उन्होंने किया। पाठ होने के बाद मैंने माँ से पूछा – "माँ ऋषिप्रणीत स्तोत्रों के अलावा अन्य कुछ भी क्या नित्य पाठ हो सकता है?"

माँ – "अपने प्रश्न को जरा और स्पष्ट करो।"

मैं – गीता संस्कृत भाषा में है और वह बंगला गद्य में भी है। अगर कोई संस्कृत वाली गीता पाठ न करके बंगला कविता में रचित गीता का पाठ नित्य करे तो क्या उसका फल बराबर प्राप्त होता है?

माँ –ऋषि वाक्य में एक विशेष शक्ति है। पर अगर कोई उसी विश्वास के साथ–साथ कवितावली गीता का पाठ करे तो उसी प्रकार का फल प्राप्त कर सकता है।

मैं – तुम्हारी बातों से क्या यही समझा जाय कि ऋषियों के अलावा अन्य किसी के द्वारा रचित स्तोत्र पाठ करने जो फल प्राप्त होता है, पाठकों के विश्वास पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर करता है और ऋषियों द्वारा प्रणीत स्तोत्र पाठ करने पर पाठकों में विश्वास रहे या न रहे, कुछ फल अवश्य प्राप्त होता है।

माँ – हाँ, यही।

मैं – गीता पाठ करने के बाद गीता माहात्म्य अगर पाठ न करूं तो क्या इससे दोष होता है?

माँ – लोग गीता पाठ करने के बाद गीता–माहात्म्य का भी पाठ करते हैं।

मैं – समस्त गीता में निष्काम कर्म का उपदेश दिया गया है। गीता माहात्म्य में फल का उल्लेख किया गया है। फलाकांक्षा की गरज से लोग

गीता माहात्म्य पाठ करने पर गीता–शिक्षा की मर्यादा को हानि होती है। गीता पढ़ना ही काफी है, फिर गीता माहात्म्य क्यों पाठ करने आऊँगा?

अवनी बाबू – अगर फल की कोई आशा न रहे तो गीता–पाठ क्यों करने जाऊँगा?

मैं – निर्वाण की आशा में गीता–पाठ कर सकता हूँ। चित्त शुद्धि के लिए भी कर सकता हूँ, पर गीता माहात्म्य में पत्नी, अर्थ, रोग–शान्ति की भी बातें हैं।

माँ – अगर किसी को फलाकांक्षा न रहे तो वह अपने से गीता–महात्म्य पाठ न करे।

महापुरुष इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं

इन सब बातों के बाद श्रीयुक्त शची बाबू सोने के लिए जाने लगे। माँ ने बाधा देते हुए कहा – "रात तीन बजे के पहले हम लोगों में सोने का नियम नहीं है। हम लोगों की शाम अभी–अभी हुई है।"

माँ की बातें सुनकर सभी लोग हँस पड़े, क्योंकि उस समय रात के ११॥ बज चुके थे। यह सच है कि पिछले कई दिनों से हम लोग ३ या ३॥ बजे के पहले सोने नहीं जा रहे हैं। फिर भी लगातार इस प्रकार रात्रि–जागरण के कारण मैं थकावट अनुभव नहीं कर रहा हूँ। यह भी माँ की कृपा है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अवनी बाबू अपनी कहानी सुनाने लगे। वे एक बार सीताकुण्ड गये थे। पहाड़ पर चढ़ते समय उन्होंने एक बाघ देखा। बहुत बड़ा बाघ था। अवनी बाबू ने कहा – "बाघ को देखते ही मेरे होश उड़ गये। मैं किधर भागूँ, यह सोच नहीं पा रहा था। फलतः एक ही जगह खड़ा रहा। बाघ लेटा हुआ था। मुझे देखकर वह उठा और जंगल की ओर चला गया।"

माँ – उत्तरकाशी जाते[1] समय हम लोगों ने दो बाघ देखा था। उसमें से किसी ने कुछ नहीं कहा । हम दोनों जिस रास्ते से गुजर रहे थे, शायद उधर उनकी नजर नहीं गयी थी ।

शची बाबू–दोनों बाघ शायद भले थे । (सभी हँस पड़े) बाबा गंभीरनाथ की जीवनी में कहीं पढ़ा था कि जिन दिनों वे गया पहाड़ पर थे, उन दिनों एक बाघ उनके निकट नित्य आता था । एक बार जब उनके पास कुछ लोग बैठे थे तब अचानक वह बाघ आ गया। उसे देखकर लोग डर गये । बाबा ने उन लोगों से कहा कि डरने की जरूरत नहीं है । बाघ बाबा को प्रदक्षिणा करके चला गया । बाबा ने बताया कि वह बाघ एक महापुरुष था ।

माँ यह कहानी धीर होकर सुनती रहीं । मैंने माँ से पूछा– "माँ, क्या महापुरुष गण साँप–बाघ बन जाते हैं ? इससे उन्हें कौन सी सुविधा होती है ?"

यह प्रश्न सुनकर माँ ने मुँह फेर लिया ।

शची बाबूने हँसते हुए मुझे कहा–"इस बात का उत्तर माँ नहीं देंगी ।"

कुछ देर बाद माँ ने संक्षेप में उत्तर दिया । माँ ने कहा–"महापुरुष गण अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं । बाघ का रूप तो उनका यथार्थ रूप नहीं हैं । यह बातें आजकल नहीं कहना चाहिए। कारण इस पर कोई विश्वास नहीं करेगा ।"

मैं–महापुरुष गण अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं, यह मैंने मान लिया । लेकिन अनेक महापुरुष सर्प–देह धारण करते हैं; साधना दृष्टि से इस तरह का देह धारण कैसे उपयोगी होता है ?

१. माँ केवल एक बार ज्योतिष बाबू को लेकर उत्तरकाशी गयी थीं।

माँ–देह–धारण लोगों के संस्कार के अनुसार होता है । जो जैसा देह–धारण की इच्छा प्रकट करते हैं, उनका वही देह हो जाता है। जीवितावस्था में सम्भवतः वे यह सोचते रहे कि वे लोग साँप या बाघ होते तो साधना–भजन में सुविधा होती । फलतः दूसरे जन्म में वे उन्हीं जीव–जन्तु के रूप में हैं । जैसे राजा भरत हिरण की चिन्ता करते रहे तो हिरण हुए थे ।

शाहबाग के कुत्ते की कहानी

इन बातों को कहते–कहते माँ शाहबाग के कुत्ते की कहानी सुनाने लगीं । माँ ने कहा–"शाहबाग में हमारे पास एक कुतिया आ गयी। कीर्तन के वक्त जब में नाचघर में बैठी रहती तब वह मेरी गोद में सिर रखकर कीर्तन सुनती थी । भावावेग में जब मेरे मुँह से स्तोत्र निकलता तब घुटनों के बल बैठकर उसे सुनती । अक्सर कीर्तन के बीच यह देखा जाता कि वह उछल रही है और चीत्कार कर रही है । जैसे नाचती हुई कीर्तन कर रही है । जब हरिलूट होता तब वह उछलकर बतासा खाती थी । लूट का बतासा खाने के लिए नहीं जाती थी । कारण कीर्तन के समय मेरी गोद में सिर रखकर सोयी रहती और जब "हरि–प्रीतिते हरि हरि बोल" कहने के साथ ही कीर्तन समाप्त होता तब वह शरीर झाड़कर प्रसाद पाने के लिए उठ बैठती थी । इसके बाद जब बतासा लुटाया जाता तब उसे पाने के लिए दौड़ जाती थी । दिन में एक प्रकार से वह हमारे पास नहीं आती थी । रात के वक्त कीर्तन में जरूर आ जाती थी ।"

खुकुनी दीदी–एक बार जाड़े के मौसम में उस कुतिया को कई बच्चे हुए । हम लोगों ने सोचा कि अपने बच्चों को छोड़कर वह कीर्तन में नहीं आयेगी । लेकिन ज्योंही कीर्तन आरम्भ हुआ त्योंही हाजिर हो गयी ।

माँ–कुछ दिनों बाद एक बकरा भी आ गया । मेरी एक जाँघ पर कुतिया और दूसरी जाँघ पर बकरा सिर रखकर कीर्तन सुनते थे। इस बकरे को एक बार कम्बल से ढक दिया था[1] ।

१. इस बकरे के बारे में एक और घटना हुई थी जिसके बारे में खुकुनी दीदी और श्रीयुत वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय एम० ए० महाशय के निकट सुन चुका हूँ। वह घटना यों है–शाहबाग में जो कालीमूर्ति रखी है, स्वप्न में वीरेन बाबू ने उनसे आदेश प्राप्त कर इस मूर्ति को पूजा चढ़ाया था। बाबा भोलानाथ ने पूजा की थी । श्री श्री माँ एक लाल कपड़ा ओढ़े देवी प्रतिमा के निकट सोयी हुई थीं । इस पूजा में बलि चढ़ाने के लिए एक बकरे का प्रबन्ध किया गया था। बलि देने के लिए जब वीरेन बाबू गँड़ासे पर सान चढ़ा रहे थे, ठीक उसी समय गँड़ासे की धार से उनकी एक अँगुली कट गयी। खुकुनी दीदी ने तुरंत इस घटना के बारे में माँ से कहा । माँ ने कहा–ठीक हुआ है । तुम वेल पत्र पर उस रक्त से थोड़ा रक्त लेती आओ । थोड़ा–सा रक्त ले जाकर दीदी ने माँ को दिया। उस रक्त को लेकर माँ ने क्या किया, यह दीदी नहीं जानती।

पूजा के बाद बकरे का बलिदान देने का प्रबन्ध किया गया । बकरे को देवी के निकट उत्सर्ग करने के बाद ज्योंही भोलानाथ ने गँड़ासा ऊपर उठाया त्योंही माँ ने आकर कहा–"इस बकरे का बलिदान नहीं होगा ।" भोलानाथ ने विरोध किया । इधर माँ ने के बदन पर हाथ फेरते हुई उसके गरदन पर अपना हाथ रख दिया । बलि नहीं चढ़ाया गया। तब माँ ने भोलानाथ के भतीजे श्रीयुत आशुतोष चक्रवर्ती को एक लाल धोती पहनने के लिए दी । अब तक माँ इसी धोती को ओढ़े सो रही थीं । इसके बाद आशु बाबू के माथे पर सिन्दूर का टीका लगाकर एक माला पहनायी गयी । माँ ने बकरे को गोद में उठा लिया। बाद में कुछ लोगों ने उस बकरे को उठाकर रमना के मैदान में छोड़ दिया। मैदान में छोड़ने के पहले माँ उस बकरे की पीठ पर अपना श्रीचरण फेरती रहीं । बकरे को मैदान में छोड़कर जब सभी लोग शाहबाग में आये तो देखा गया कि वह बकरा भी पीछे–पीछे चला आ रहा है । उस दिन से वह बकरा शाहबाग में रहने लगा । कभी–कभी वह माँ के बिछौने पर भी बैठा रहता था । अक्सर माँ उसका मुँह अपनी गोद में खींचकर उसे प्यार करने लगती थीं । एक दिन यह भी देखा गया कि माँ ने उसे कम्बल ओढ़ाया है । इसका कारण पूछने पर माँ ने बताया–"अगले जन्म में इसके पास कम्बल था । इस जन्म में भी इसने कम्बल ग्रहण कर लिया।"

कर्मक्षय से पूर्वस्मृति का जागरण

शची बाबू एक अन्य कुत्ते की कहानी सुनाने लगे । यह कहानी वे ढाका जिले के सुयापुर गाँव में सुन चुके थे । काफी लोगों ने इन्हें यह बताया था कि सारी घटना सत्य है ।

एक ब्राह्मण से एक मुसलमान ने कुछ रुपये उधार लिये थे, पर उधार चुकता करने के पहले ही वह मर गया । उस मुसलमान का एक लड़का था । वह लड़का इस कर्ज की बाबत जानता था या नहीं, कहा नहीं जा सकता । उसने कर्ज चुकाने से इनकार कर दिया। उसके पिता अक्सर स्वप्न में आकर उसे कर्ज अदा कर देने के लिए कहा करते थे । चूँकि वह सपने में देखता, इसलिए परवाह नहीं करता था। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि उसके पिता कह रहे हैं–'तू कर्ज अदा नहीं कर रहा है, इससे मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।'

इस स्वप्न को देखने के बाद वह लड़का पण्डित जी के घर हाजिर हो गया । रुपये के बदले एक गाय और बछवा ले गया । गाय मूलधन के लिए और बछवा सूद के लिए । ब्राह्मण गाय और बछवा पाकर सन्तुष्ट हो गया । तभी उसने ब्राह्मण से कहा कि आप अपने कुत्ते को बुलाइये । ब्राह्मण ने अपने कुत्ते को बुलाया । कुत्ते के आने पर उसके गले से लिपटकर लड़के ने रोते हुए कहा – "पिताजी, अब तो तुम्हारा कर्ज अदा हो गया ।"

कुत्ते की आँखों से भी आँसू बहने लगे । इस प्रकार लगातार तीन दिनों तक वह आँसू बहाता रहा और फिर वहीं बैठे–बैठे मर गया ।

यह कहानी समाप्त होते ही माँ ने पूछा–"अच्छा, यह बताओ कि उस मुसलमान का जन्म कुत्ते में क्यों हुआ ?"

एक–एक व्यक्ति एक–एक बात कहने लगे । एक ने कहा– "कुत्ता स्वामी–भक्त होता है, इसलिए सेवा करके कर्ज अदा करने आया था।"

शची बाबू–क्यों माँ, कुत्ता रोता क्यों रहा ?

माँ–उसकी पूर्वस्मृति जाग उठी थी । कर्मक्षय होने पर पूर्वस्मृति जाग उठती है । मनुष्य के बारे में भी ऐसा ही जानना । जब मनुष्य का कर्मक्षय होने लगता है तब उसकी पूर्वस्मृति जाग उठती है । उस मुसलमान का जन्म कुत्ते के रूप में शायद इसीलिए हुआ था कि मृत्यु के पूर्व उसके मन में कुत्ते की चिन्ता उत्पन्न हुई थी । व्यक्ति की मृत्यु के समय की चिन्ता से पराजन्म होता है ।

शुद्ध वासना संस्कार सृष्टि नहीं करता

वासना के द्वारा जन्म नियन्त्रित होता है, इस प्रकार की बातें होने लगीं ।

माँ ने कहना प्रारम्भ किया–"इस बार जब आसाम घूमने गयी थी तब कुछ पहाड़ी केलों के पौधे देखा । उनके फूल काफी लाल और सुन्दर थे । उस समय किसी ने कहा कि इन पेड़ों में केवल फूल ही नहीं होते, फल भी लगते हैं । बाद में जब परशुराम कुण्ड गयी तब मार्ग में उसी प्रकार केलों के पेड़ दिखाई दिये । इन फूलों की बात जबान पर लाते ही हमारा ड्राइवर गाड़ी रोक कर जंगल के भीतर चला गया । ड्राइवर गोरखा था । उसके साथ भुजाली थी। उस भुजाली से पेड़, फल, फूल सब काट लाया । लेकिन उसे ऐसा करने को किसी ने कहा नहीं था । उसने अपने मन से ऐसा किया। फूल को पास में रखकर देखने की इच्छा हुई तो तुरत वह वासना भी पूर्ण हो गई। इन पेड़ों में फल लगते हैं या नहीं, यह सन्देह हुआ था, उसका भी समाधान हो गया ।"

शची बाबू–माँ, तुम्हारी वासना तो सहज ही पूरी हो गयी, पर हम लोगों में अगर उस फूल को पाने की वासना हो तो क्या हमें जंगल में जन्म लेना पड़ेगा ?

माँ–हाँ, प्रबल वासना होने पर उससे संस्कार उत्पन्न होगा और उसे भोग करने के लिए जन्म ग्रहण करना पड़ेगा । इसीलिए तुम लोगों को वासना शुद्ध करने के लिए कहती हूँ । वासना शुद्ध होने पर वह अपने–आप पूर्ण हो जाती है । इसीलिए प्रत्येक कार्य भगवान् के उद्देश्य से करना चाहिए । एक बार साधना और वासना[1] मुझे देने के लिए फूलों की माला तैयार की थी । आश्रम आते समय वह माला साथ ले आयेंगी सोचकर रख दिया था । उन दिनों नन्दू[2] का घर साधना के घर के पास ही था । नन्दू उनके घर अक्सर जाया करता था। उस दिन नन्दू साधना के घर गया और लोगों की अजानकारी में माला उठाकर अपने घर चला आया । वह बच्चा था । कुछ देर तक माला लेकर खेलता रहा, फिर फेंक दिया । बाद में उस माला को पाकर एक अन्य व्यक्ति ने उसमें दो–चार नये फूल मिलाकर एक नयी माला बनाकर वह आश्रम में आया और मुझे पहनायी । साधना वगैरह आश्रम आकर मेरे गले में उस माला को देखकर अवाक् रह गयीं । इस प्रकार उनकी इच्छा पूर्ण हो गयी ।

श्री श्री माँ के शरीर में विविध यौगिक क्रियाओं का स्वतः स्फुरण

इसके बाद विमला माँ और निर्मला की स्थिति की चर्चा चल पड़ी । शची बाबू ने कहा–मैंने देखा है कि भावावस्था में विमला माँ की आँखें निस्पन्द हो जाती हैं । हाथ–पैर सख्त हो जाते हैं और भीतर असह्य पीड़ा अनुभव करती हैं । काफी देर तक बेहोश होकर पड़ी रहती हैं आदि ।

---

१. ये दोनों बहनें हैं । दोनों ही माँ के भक्त हैं । श्रीमती वासना इन दिनों बी० ए० पास करके अध्यापन कर रही हैं ।

२. स्वामी अखण्डानन्द जी के छोटे पुत्र ।

ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने श्री श्री माँ के पूर्व अवस्था के बारे में दो–एक बातें बतायीं ।

इसके बाद माँ स्वयं ही कहने लगीं–"मेरे भाव कुछ अलग किस्म के थे । हवा के वेग में जिस प्रकार कोई कपड़ा उड़ता जाता है और कोई जब उसे पकड़ने जाता तो सहज ही पकड़ नहीं पाता था, यह शरीर भी इसी प्रकार भावावस्था में उड़ता–लुढ़कता जाता था । कोई पास आकर पकड़ नहीं पाता था । भाव का खेल आरंभ होने पर शरीर के भीतर नाना प्रकार की क्रियाएँ आरम्भ हो जाती थीं । उन दिनों आहार नहीं करती थी, फिर भी शरीर काफी हृष्टपुष्ट था और सिंह की भाँति शक्ति थी । मैं आहार नहीं करती, यह बात मेरा चेहरा देखकर कोई कह नहीं सकता था । अक्सर शरीर अकड़ जाता। हाथ–पैर रक्तशून्य दिखाई देने लगते । कभी–कभी मुर्दे की तरह पड़ी रहती । भावावेश में शरीर को लेकर इस तरह का खेल होने पर भी शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या दर्द नहीं होता था । कारण यह सब स्वभाव से होता था । हाथ–पैर का अकड़ना, सख्त होना, यह भी अन्य रूप है । लेकिन हाथ–पैर की मांसपेशी सख्त नहीं होती। वे काफी नरम रहते । लेकिन हाथ को स्पर्श करने पर ऐसा लगता जैसे वह सूखी लकड़ी है । शरीर के साथ इसका कोई सम्पर्क नहीं है ।

"अति अल्प आहार तथा अनाहार काफी दिनों तक थे । अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं किया । सब कुछ अपने आप होता रहा । शायद उन दिनों शरीर पर हठयोग की कोई क्रिया हो रही थी । लेकिन इस यौगिक क्रिया और सांसारिक क्रिया में सामंजस्य था । सारा दिन भावावेश में पड़ी रहती । शाम को उठकर रसोई बनाकर काफी लोगों को खिलाती थी । घर–गृहस्थी का कोई कार्य बाकी नहीं रहता था और दूसरी ओर यौगिक क्रियाएँ होती रहीं ।"

साधनाकाल में दैहिक यन्त्रणा के कारण और साधन के लक्ष्य

श्री श्री माँ अपने बारे में कहते–कहते पुनः विमला माँ की स्थिति के बारे में विश्लेषण करने लगीं ।

माँ ने कहा–''भावावेश में इनके शरीर में जो जलन होती है, वह बन्धन की जलन है । बाधा पाने पर यह जलन उत्पन्न होतो है। क्योंकि भाव में इस प्रकार की बाधा पाना आवश्यक है, इस प्रकार की बाधाओं से धैर्य की शिक्षा प्राप्त होती है । भाव के समय जो पीड़ा–वेदना का शरीर में अनुभव होता है, उसका कारण यह है कि भाव के दबाव से ग्रन्थियाँ टूटने लगती हैं । नाम के गुण से सब होता है । पुरानी ग्रन्थियाँ टूटकर पुनः नये रूप में शरीर का निर्माण होता है । इसीलिए कहती हूँ कि मन को सदा नामरूप का भोजन देते रहो। लेकिन नाम में जो आसक्ति है, यह भी एक प्रकार का बन्धन है। नाम करने या सुनने में जो अच्छा लगता है, उसी से समझा जाता है, कि वहाँ वासना के बीज हैं । वासना रहने पर बन्धन । इस स्थिति से मुक्त होना चाहिए । इसीलिए बाधा की जरूरत है । आकांक्षित वस्तु के भोग में बाधा पाने पर यन्त्रणा होती है । इसी यन्त्रणा को सह्य करते–करते धैर्य का अनुभव होता है । यही धैर्य आगे चलकर समता लाती है । समता प्राप्त करना ही साधना का लक्ष्य है । (मुझे लक्ष्य करती हुई) पिताजी ने उस दिन मुझसे पूछा था कि धर्म–भाव के विकास के मार्ग में लोगों को बाधा प्राप्त होती है, क्या यह धर्म–राज्य के नियम हैं ? इसके उत्तर में मेरा कहना है कि यही नियम है । इन्ही बाधाओं में से क्रमशः धैर्य के भीतर होकर समता प्राप्त होती है । उस समय एक ऐसी स्थिति आती है कि लाभ में सुख नहीं है और हानि में दुःख नहीं है। जीवन्मुक्तों का यही भाव होता है । इस भाव का आभास शिशुओं में देखा जाता है । उनकी यह हँसी यह रोदन ।

"धैर्य जब तक चरम सीमा तक नहीं पहुँचता तब तक शान्त भाव नहीं आता । साधना में जो ज्वाला उपस्थित होती है, वह तो अच्छी ही है । ठीक लकड़ी की तरह जलकर अंगार और बाद में राख बन जाना तभी समता आती है । तुम लोगों ने देखा होगा कि राख को पानी में मिलाने पर वह पानी के साथ मिल जाती है और शरीर में पोतने पर शरीर में मिल जाती है । इसी प्रकार साधना में ज्वाला-यन्त्रणा अनुभव करते-करते एक बार समता प्राप्त कर लेने पर, उस समय किसी भी स्थिति में क्यों न आओ, कोई तुम्हारी शक्ति नष्ट नहीं कर सकता । साधना करते समय कामना-वासना के साथ जो लड़ाई करनी पड़ती है, उसी को शास्त्रों ने देवासुर संग्राम कहा है । यह सब ज्वाला-यन्त्रणा आने पर गुरु पर निर्भर रहना चाहिए । भाव के विकास में बाधा पाने पर सोच लेना चाहिए कि गुरु बाधा उत्पन्न कर रहे हैं । सहायता पाने पर सोचना चाहिए कि वे सहायता कर रहे हैं । इस प्रकार धैर्य धारण करते रहने पर अन्त में समता प्राप्ति होती है ।"

"(शची बाबू को लक्ष्य करती हुई) भावावेश में तुमने जो आंखों को निस्पन्द होते देखा है, वह कुछ नहीं हैं । भाव के अलावा कुछ दिनों तक त्राटक-साधना का अभ्यास करने पर आंखें उसी प्रकार निस्पन्द हो जाती है । नाम के गुणों से भी ऐसा हो सकता है । भाव के वेग में कुछ देर तक ज्ञानशून्य हो जाने के कारण ऐसा हो जाता है । एक प्रकार से यह हिस्टिरिया रोग के जैसा होता है । सांसारिक शोक-दुःख से आहत होकर लोगों का जिस प्रकार ज्ञान लोप हो जाता है, उसी प्रकार धर्म सम्बन्धी भावों का वेग सह्य न कर पाने के कारण ज्ञान गायब हो जाता है । दोनों का रूप एक ही है, केवल कारण भिन्न है । भावावस्था में जब व्यक्ति अवसन्न हो जाता है तब भी उनके शरीर में भोग के बीज रह सकते हैं, क्योंकि उस तरह पड़े

रहना उन्हें अच्छा लगता है । उस वक्त उन्हें दूसरों के द्वारा स्पर्श करना या बातें अच्छी नहीं लगती । अच्छा लगना या न लगन भोग के ही लक्षण हैं । इस प्रकार के अवसन्न भाव को समाधि नहीं कहा जा सकता । अवसन्नता शरीर की अवस्था है, समाधि शरीर की अवस्था नहीं हैं ।''

साधना के विभिन्न स्तर या स्थितियाँ

''सर्वदा नाम करते–करते अन्त में नाम के गुणों से शरीर में नाना प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । नाम करके किंवा अन्य किसी प्रकार से एकमुखी वृत्ति होने पर भगवद् भाव आकर शरीर पर लीला आरम्भ करता है और इसके कारण शरीर मानो जगत् से अलग–थलग हो जाता है । उस समय मैं इस जगत् का प्राणी हूँ या मेरे पत्नी–पुत्रादि हैं, यह भाव स्मरण नहीं रहता ।''

''लोग साधारणतः नाम किंवा मूर्ति की सहायता से एक लक्ष्य होते हैं । एक नाम जपते जपते किंवा एक मूर्त्ति का ध्यान करते–करते उसी नाम या मूर्ति के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है । इसीलिए एक–एक व्यक्ति में एक–एक नाम के भाव की उद्दीपना होती है । कीर्तन के समय अगर किसी का ताल, भाव, मूर्ति एक हो जाता है तो शरीर में क्रिया आरम्भ हो जाती है । शरीर भावावेश में नाना भाव में खेलने लगता है । अगर किसी कारण से ताल भंग हो जाता है तो शरीर पड़ा रहता है और निश्चल भाव से जमीन पर पड़ा रह जाता है । दूसरी ओर एक ताल या गति देर तक चलाते रहने पर भावों के खेल समान गति से नहीं होते । क्योंकि वह शरीर की शक्ति के द्वारा सीमाबद्ध होता है । भावों का खेल कुछ देर खेलने के बाद बन्द हो जाता है। जब वह बन्द हो जाता है तब शरीर का पतन होता है और पहले की तरह सारा शरीर निश्चल होकर पड़ा रहता है । यह समाधि की स्थिति नहीं हैं, जड़त्व का भाव है ।

"इस प्रकार कुछ देर तक संज्ञाशून्य रहने के बाद साधक को जब होश आता है तब वह रोने लगता है । यह रोना ठाकुर के अभाव के लिए, अर्थात् भावावेश में जो मूर्ति दिखाई देती है, भाव समाप्त होने पर वह चली जाती है। साधक संज्ञा प्राप्त कर इस अभाव के लिए रोने लगता है । विरह का दुःख दूर होने पर साधक जब स्थिर हो जाता है तब उसमें जागतिक भाव प्रकट होने लगते हैं, उस वक्त वह पुनः सामान्य लोगों की तरह आचार–व्यवहार करने लगता है । इसे साधना की प्रथम अवस्था कहा जाता है । सभी की यही स्थिति होती है, ऐसी बात नहीं है; पर साधारण भाव में इस स्थिति का वर्णन किया गया ।"

"साधना के द्वितीय स्तर का रूप यों हैं–जिस नाम या मूर्ति को लेकर साधक एक लक्ष्य होता है, वही क्रमशः फैलता रहता है। अर्थात् इस स्थिति में विशेष नाम या विशेष मूर्ति की सहायता के बिना भी भाव का प्रकाश होता है । किसी भी नाम या किसी भी मूर्ति के द्वारा भाव की उद्दीपना होती है । यही साधना की उन्नति के लक्षण हैं । इसी को मैं 'ताल–बेताल होना' कहती हूँ । इस स्थिति में शरीर के बाह्यिक लक्षणों में परिवर्तन होता है और सांसारिक आसक्ति में कमी आ जाती है । इस समय साधक को जल, स्थल, आकाश में, सर्वत्र इष्ट मूर्त्ति दिखाई देने लगती है। यह भी स्थूल अवस्था हैं, क्योंकि अभी तक गुरु खण्ड रूप में आ रहे हैं । इन सारी स्थितियों को तुम लोग ठीक से नहीं समझ सकोगे और न मैं तुम लोगों को ताल, भाव आदि की उपमा देकर समझा सकूँगी । स्थूल भाव में बातचीत के जरिये समझाया जा सकता है । सूक्ष्म भाव समझाना कठिन है । उसे तो केवल अनुभव किया जा सकता है । संक्षेप में समझाना पड़े तो यही कहा जा सकता है कि गुरु जब तक खण्ड भाव में आते हैं अथवा खण्ड–खण्ड भाव में गुरु की उपलब्धि होती है तबतक स्थूल भाव रह

जाता है । बाद में एक अखण्ड सत्ता का बोध होता है । जैसे मेरा हाथ मैं हूँ, पैर भी मैं हूँ, बाल भी मैं हूँ; दूसरी ओर हाथ–पैर, बाल आदि समष्टि रूप में मैं ही हूँ । जब यह भाव आता है तब गुरु–संस्कार का भाव दूर हो जाता है ।''

''नाम का कीर्तन सुनकर जब शरीर पर यन्त्रणा अनुभव हो तब इसे साधना की प्रथम अवस्था समझना चाहिए । यह दाँत निकलने की स्थिति जैसी है । देखा होगा कि जब बच्चों के दाँत निकलते हैं तब बुखार, पेट की बीमारी आदि उपसर्ग होते हैं । दाँत निकलने के बाद कितने अनन्त प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं, उसे बताकर उसका अन्त नहीं किया जा सकता । एक बार एक–एक कर दाँत गिरते रहते हैं । दाँत गिर जाने की स्थिति को मैं वेदान्त या समता की स्थिति कहती हूँ । जब तक बेदन्त नहीं हुआ जाता तब तक साधना चलती रहती है ।''

धर्म का सम्बन्ध बंधन नहीं

आज शाम के समय एक घटना हुई जिसका उल्लेख नहीं कर सका हूँ । शाम के बाद माँ को लेकर औरतें आमोद कर रही थीं। उस समय हम लोग बाहर बैठे बातचीत कर रहे थे । ठीक इसी समय खुकुनी दीदी मुझे बुलाकर भीतर ले गयीं । जब मैं श्री श्री माँ के निकट हाजिर हुआ तब खुकुनी दीदी ने मुझसे कहा–''आज आपका एक नया सम्बन्ध हुआ । दीदी (अर्थात् मेरी पत्नी) ने प्राणकुमार बाबू की पत्नी को माँ कहकर बुलाया हैं इसलिए यही सम्बन्ध यहीं पक्का हो गया ।''

यह बात सुनकर मैं चुप होकर खड़ा रह गया । श्री श्री माँ मुझे चिंतित देखकर बोली–''पिताजी, इस मामले में तुम्हें कुछ करना नहीं है ।''

मैंने हँसकर कहा–"मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं तो दामाद बन गया हूँ ।"

इस रिश्ते की घटना शायद आज दोपहर को हुई थी । दोपहर को एक हँडिया दही असावधानीवश श्रीयुत् शची बाबू के पैर से लगकर गिर गया था । यह दृश्य देखकर माँ ने कहा था कि दही गिर जाना एक शुभ लक्षण है । बहरहाल जब यह रिश्ता जोड़ा जा रहा था तब पास में अधिक लोग नहीं थे । कुछ देर बाद सुनने में आया कि प्राणकुमार बाबू की पत्नी को कुछ हो गया है । प्राणकुमार बाबू की बड़ी लड़की (श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुह महाशय की पत्नी) ने आकर माँ से पूछा–"माँ क्या हुआ है ?"

माँ ने हँसकर कहा–"अपनी माँ से पूछो ।"

उसने सरल विश्वास के साथ अपनी माँ से पूछा–"माँ, तुम्हें क्या हुआ है ?"

यह बात सुनकर सभी हो–होकर हँस उठे । इस घटना को लेकर लोग हँसी–मजाक कर रहे थे । तभी माँ उस स्थान से उठ गयीं । मैंने माँ के पास जाकर पूछा–'माँ, तुम तो लोगों का बंधन मोचन करने आयी हो । इधर देख रहा हूँ कि स्वयं ही नये बन्धनों की सृष्टि कर रही हो ।"

माँ ने कहा–"अगर यह कहते हो तो सुनो, यह जो धर्म का सम्बन्ध है, यह बंधन का कारण न होकर बल्कि बंधन के मोचन में सहायता करता है । इससे तुम्हें कोई हानि नहीं होगी ।"

श्री श्री माँ की बातें सुनकर मैं आश्वस्त हो गया । मंगलमयी के कार्य के प्रति जो संदेह किया था, उसके प्रति अफसोस होने लगा।

१ जनवरी, सन् १९३७ ई., शुक्रवार । आज दोपहर १२ बजे मुझे कलकत्ता वापस जाना है; पर माँ ने कल ही कह दिया था कि

१२ बजे में रवाना नहीं हो सकता, कारण बेबी दीदी आज माँ को दोपहर के समय नाव पर भोग चढ़ायेंगी । मैं शाम की गाड़ी से वापस जा सकता हूँ । शाम की गाड़ी से भी जा सकता हूँ या नहीं, यह प्रश्न माँ से पूछने पर वे बोलीं–"सवेरे बिछौना वगैरह बाँधकर रख देना । अगर जाना हुआ तो चले जाना वर्ना उसे खोल लेना ।"

सवेरे सोकर उठते ही अपना सामान ठीक–ठाक करने की तैयारी कर रहा था । ठीक इसी समय खुकुनी दीदी आकर मुझसे बोलीं– "माँ ने कहा है कि आज आप सभी के साथ नाव पर न जाकर अलग नाव पर जाइयेगा । मैं खास मौके पर आपकी नाव पर माँ को ले आऊँगी । उस समय दीदी (मेरी पत्नी) के साथ माँ की बातचीत होगी।"

यह भी सुना कि माँ आज किसी वैष्णवी के यहाँ जायेंगी जो पिछले २२ वर्षों से अनाहार हैं ।

सेवादासी और श्री श्री माँ

हम लोगों को अकेले जाना पड़ेगा सोचकर काफी देर तक धर्मशाले में बैठे रहे । माँ के साथ काफी लोग नाव पर घूमने चले गये । बाद में धर्मशाला से निकलकर एक नाव के द्वारा चल पड़े । कुछ दूर आने पर देखा कि बड़ालघाट पर श्री श्री माँ तथा अन्य लोगों की नौकाएँ खड़ी है । सभी लोग माँ के साथ वैष्णवी से भेंट करने गये हैं । दो–एक साथी मिल जाने पर मेरी पत्नी लड़कियों को लेकर माँ के पास चली गयी । मेरे सिर में दर्द था, इसलिए मैं नाव पर सो गया । कुछ देर सोने के बाद नाव से बाहर आया ।

मुझे देखकर एक माँझी ने कहा–"माँ ने सभी लोगों को वैष्णवी के आश्रम में जाने को कहा है । यह समाचार एक व्यक्ति आकर कह गया है ।"

यह बात सुनकर मैं भी चल पड़ा । लेकिन कहाँ जाना पड़ेगा, पता नहीं । न तो वैष्णवी का नाम मालूम है और कहां आश्रम है, यह भी ज्ञात नहीं । मैंने घाट पर दो–तीन व्यक्तियों से पूछा कि नवद्वीप में एक ऐसी वैष्णवी हैं जो पिछले २२ वर्षों से आहार नहीं करतीं। उनका आश्रम कहां हैं ? जिन लोगों से यह सवाल किया, वे सब नवद्वीप के रहनेवाले ही थे, पर उन्हें ऐसी वैष्णवी का पता ज्ञात नहीं था । बड़ालघाट से जो सड़क नगर की ओर गयी हैं, उसी पर मैं चलने लगा । कुछ दूर आगे बढ़ने पर देखा कि एक परिचित व्यक्ति खड़ा है । ये कलकत्ता के निवासी है, पर इन दिनों नवद्वीप में रहते है । नित्य हम लोगों के धर्मशाला में आकर माँ को भजन गाकर सुनाते है । उन्होनें मुझे देखते ही कहा–"मैं आपके लिए यहाँ खड़ा हूँ । (एक मकान की ओर इशारा करते हुए) इसी मकान में माँ है ।"

उक्त सज्जन ने वह मकान दिखाया वर्ना मैं कभी भी वहां तक नहीं पहुँच सकता था । बहरहाल, उस मकान में प्रवेश करते ही देखा– एक प्रकाण्ड मन्दिर है । मन्दिर के भीतर राधा–कृष्ण की मूर्ति है। श्रीकृष्ण की मूर्ति देखने में सुन्दर है । मन्दिर के बरामदे पर श्री श्री माँ तथा अन्य साथीगण बैठे थे । मन्दिर के सामने एक छोटा–सा आंगन है । आंगन में एक फूल तथा कुछ तुलसी के पौधे लगे हैं । बायीं ओर छोटे–छोटे कमरे हैं । मन्दिर के विग्रह का नाम गोविन्दजी है । वैष्णवी के उपास्य देवता । वैष्णवी का नाम सेवादासी है। जब मैं मन्दिर के बरामदे में पहुँचा तब प्रसाद वितरण हो रहा था । किंचित् प्रसाद मुझे भी मिला । मैंने सोचा कि मेरी किस्मत अच्छी है, क्योंकि मैं सबके अन्त में आया हूँ और वह भी अनिच्छापूर्वक । मेरे आने के बहुत पहले ही प्रसाद वितरण का कार्य समाप्त हो जाना चाहिए था ।

माँ तथा सेवादासी के सामने ही खुकुनी दीदी मुझे वैष्णवी का परिचय देने लगीं । माँ हँसती हुई मेरी ओर देखने लगीं । दीदी सेवादासी को दिखाती हुई कहने लगीं–"आपका मकान ढाका जिला के माणिकगंज महकमा में हैं । पिछले २२ साल से आप भोजन नहीं कर रही हैं। आज से २२ वर्ष पूर्व एक दिन गोविन्दजी ने इनके सामने प्रकट होकर कहा था–'आज से तुम्हारे समस्त बहिर्द्वार बन्द कर दे रहा हूँ और तुम्हारा समस्त भार ग्रहण कर रहा हूँ ।'"

"उसी दिन से आप न तो आहार करती हैं और न मल–मूत्र त्याग करती हैं । यहाँ तक कि गोविन्दजी का चरणामृत मस्तक पर धारण करती हैं, पर मुँह में कुछ भी नहीं डालतीं । आप गोपालजी से बातचीत करती हैं और बिना उनके आदेश के बाहर कहीं नहीं जातीं ।"

खुकुनी दीदी की बातें सुनने के बाद समझते देर नहीं लगी कि नवद्वीप के निवासी क्यों नहीं इन्हें जानते । चूँकि आप आश्रम से बहुत कम बाहर निकलती हैं, इसलिए इन्हें कोई नहीं जानता ।

दीदी ने आगे कहा–"कल गोविन्दजी ने इन्हें बताया कि जिस शरीर में गोविन्दजी बिराजमान हैं, वह शरीर नवद्वीप में मौजूद है। तुम स्वयं जाकर उनका स्वागत करो । यही वजह है कि कल शाम को वैष्णवी हम लोगों के धर्मशाले में जाकर माँ को निमन्त्रण कर आयी हैं । यहाँ आने पर माँ ने इनसे पूछा–'माँ गोविन्दजी ने आपको क्या कहा है ?'

इन्होंने उत्तर दिया–'जिस शरीर में गोविन्दजी विराजमान हैं वह नवद्वीप में है । मैं स्वयं जाकर तुम्हारा स्वागत करते हुए ले आऊँ?' माँ ने हम लोगों के सामने सेवादासी से पूछा–'कितने दिनों से इस शरीर में गोविन्दजी विराज रहे हैं ?'

सेवादासी–बचपन से ही ।

माँ–तो क्या यह शरीर अच्छा है ?''

इन बातों को सुनकर मैं माँ की ओर अवाक् होकर देखने लगा । मन ही मन सोचने लगा कि क्या माँ इस समय स्पष्ट रूप से अपना आत्म–परिचय दे रही हैं ? देहरादून में जो परिचय मेरे सामने दार्शनिक तत्व के माध्यम से अस्पष्ट रूप में दे चुकी हैं, आज उसी को सेवादासी के माध्यम से दे रही हैं । बाजितपुर में निशी बाबू[1] के प्रश्न के उत्तर में स्वयं को ''पूर्ण ब्रह्म नारायण'' कहते हुए प्रकट किया था । आज पुनः सेवादासी की जबानी अपने को 'गोविन्द' कहकर परिचय दे रही हैं । यह सब सोचते–सोचते मेरी आँखें भर आयी । रह–रहकर माँ मेरी ओर देखती हुई हँसती रहीं ।

---

१. बाजितपुर में रहते समय ही श्री श्री माँ के शरीर में विभिन्न योग–क्रियाएँ प्रकट होती रहीं । साधारण लोग इसका मर्म नहीं समझ सके थे । कोई इसे भौतिक आवेश, कोई हिस्ट्रिया रोग समझता रहा । कुछ लोग इसके इलाज के लिए भोलानाथ को सलाह देते रहे । श्री श्री माँ के ममेरे भाई श्रीयुत निशिकान्त भट्टाचार्य महाशय उन दिनों बाजितपुर में रहते थे । वे भी श्री माँ को डाक्टर या कविराज को दिखाने के पक्षपाती थे । एक दिन श्री श्री माँ अपने शयनकक्ष में कुण्डली बनाकर बैठी थीं । ठीक उसी समय नाना प्रकार के आसन–मुद्रा होती रहीं । यह दृश्य देखकर निशि बाबू ने जरा झल्लाकर बाबा भोलानाथ से कहा कि वे यह सब घटना देखते हुए भी क्यों नहीं यथोचित चिकित्सा कराते । चुपचाप बैठे क्यों हैं ? यह सब बातें श्री श्री माँ के सामने हुई । यह सुनकर माँ ने निशि बाबू की ओर देखते हुए पूछा– 'तुम क्या करने को कहते हो ?' जो कि माँ ने इस बात को स्वाभाविक ढंग से ही कहा था, फिर भी इन बातों को सुनते ही डर कर वे कई कदम पीछे हट गये थे । लगभग अपने अनजाने ही उन्होंने माँ से पूछा–''आखिर तुम कौन हो ?''

उत्तर में माँ ने कहा था–''पूर्ण ब्रह्मनारायण ।''

इस कहानी को मैं श्रीयुत निशिकान्त भट्टाचार्य की जबानी सुन चुका हूँ ।

माँ ने सेवादासी से पूछा–"तुम तो गोविन्द के साथ बातें करती हो । तुम्हारे साथ गोविन्द का क्या रिश्ता है ?"

सेवादासी को नीरव रहते देख माँ ने पुनः कहा–"अच्छा, मेरे कानों में चुपके से बता दो ।"

इतना कहकर माँ अपना कान उसके मुँह के पास ले गयीं । सेवादासी ने फुसफुसाकर कुछ कहा । माँ ने हम लोगों से कहा–"यह कह रही हैं कि 'जिन्हें देह–प्राण समर्पित किया है, उसके साथ कौन–सा रिश्ता होता है ?' अब तो तुम लोग समझ गये होगे कि गोविन्द के साथ इनका कौन–सा रिश्ता है ?"

सेवादासी का मुँह दिखाई नहीं दे रहा था । वे घूँघट काढ़े बैठी थीं । सुना कि आपकी उम्र ४६ वर्ष है । पति के जीवित रहते समय आपमें यह भाव हुआ था । पति की मृत्यु के बाद वे गाँव से नवद्वीप चली आयीं और यहाँ गोविन्दजी का मन्दिर विग्रह स्थापित कर सेवा–पूजा कर रही हैं ।

सेवादासी के जीवन के बारे में अन्य बातें नहीं सुनने में आयीं । मैं बार–बार माँ की ओर देखता रहा । माँ आज आनन्द में मग्न हैं । श्रीयुत् प्राणकुमार बाबू की पत्नी माँ के निकट बैठी थीं । माँ उनके गले में हाथ डालकर सेवादासी से कहने लगीं–"माँ, माँ, तुम मेरी योगिनी माँ को देखो ।"

प्राणकुमार बाबू की पत्नी लज्जित हो उठीं । माँ एक बार उनकी ओर एक बार मेरी ओर देखती हुई हँसने लगीं । इस हँसी का अर्थ यह है शायद कि कल इसके साथ तुम्हारा रिश्ता कायम किया था, यह देखकर तुम चिन्तित हो उठे थे । आज समझ रहे होगे कि किसके साथ तुम्हारा रिश्ता किया है ।

इसके बाद जरा जोर से बोल उठीं–"मेरी बासन्ती माँ कहाँ हैं ?"

मेरी पत्नी को बुलाकर लाया गया । माँ ने सेवादासी से कहा– "यह है मेरी बासन्ती माँ । देखो । कृष्ण योगे रात्रि जेगे आँखि ढुलू-ढुलू, माँ की आँखें ढँपती जा रही हैं ।"

मेरी पत्नी शरमाकर पीछे हट गयी । इधर मैं सोचने लगा कि माँ यह सब क्या कर रही हैं ? कृष्णयोग में कभी रात जागते मैंने नहीं देखा । यह ठीक है कि नवद्वीप आने के बाद से माँ के साथ रात्रि जागरण करना पड़ा है । मैं यही सब सोच रहा हूँ और उधर माँ मेरी ओर देखती हुई खूब हँस रही हैं । माँ की सारी बातें आज रहस्यमयी लग रही हैं ।

इस तरह कुछ देर तक विनोद करने के बाद माँ ने सभी को कीर्तन करने को कहा । महिलाएँ गाने लगीं–

"श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द"

गायन आरम्भ होने के साथ ही सेवादासी भावावेश में आ माँ की गोद में गिर पड़ीं और दोनों हाथों से माँ को इस कदर जकड़ लिया जैसे लोहे की जंजीर से बाँध दिया हो । गायन के साथ-साथ उनका तन-बदन रह-रहकर सिहर उठता था ।

कुछ देर बाद कीर्तन समाप्त हो गया । सभी सेवादासी को देखने के लिए व्यस्त हो उठे । माँ सेवादासी को दिखाती हुई बोलीं–"देखो, कितना कसकर जकड़ रखा है । (सेवादासी के हाथों की अंगुलियाँ दिखाती हुई) देखो, दोनों हाथों की अंगुलियाँ किस कदर फँसा रखी है । इसे छुड़ाना कठिन हो रहा है । तुम लोग अगर खींचकर खोलना चाहो तो खोल नहीं सकते ।"

बाद में हम लोगों की ओर देखती हुई कहने लगीं–"देखो, यह मुझे ले जा रही है । तुम लोग मुझे छुड़ा लो ।"

माँ की बातें सुनकर मैं डर गया । सोचा, यह कौन–सी परेशानी आ गयी । मैंने खुकुनी दीदी से कहा–"दीदी, खड़ी–खड़ी क्या देख रही हो ? जाइए, जल्दी से जबरन माँ को छुड़ा लीजिए ।"

दीदी के अलावा मां को और कोई छुड़ा नही सकता, मुझे ऐसा लगा । दीदी ने भी मेरे भय से संक्रमित होकर माँ को जाकर पकड़ लिया । कुछ देर बाद दीदी वापस आकर बोलीं–"माँ ने मुझसे कहा कि तुम मुझे छोड़ दो । मैं थोड़ी देर में आती हूँ ।" यह सुनकर मैं निश्चिन्त हो गया ।

इधर माँ हँसती हुई बार–बार सेवादासी से कहती रहीं–"मुझे छोड़ दो, छोड़ दो ।"

सेवादासी के जो दो–चार भक्त थे, उन लोगों ने हमें कीर्तन करने को कहा । इस आदेश के अनुसार पुनः कीर्तन प्रारम्भ हुआ । माँ ने हाथ उठाकर हमें कीर्तन करने को कहा । शची बाबू और अवनी बाबू नृत्य करते हुए कीर्तन करने लगे । आँखों से अश्रुधारा बहने लगी । इस शोरगुल से जरा दूर हट कर मैं आँखें बन्द किये बिना नाम जप रहा था । उस समय वहाँ भाव की बाढ़ आ रही थी । हम सब उसमें तैर रहे थे ।

ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने मुझे धक्का देते हुए कहा– "आप यहाँ कोने में क्यों खड़े हैं ? आकर देखिए, माँ नृत्य कर रही हैं ।"

यह बात सुनते ही मैं भीड़ में पुनः प्रवेश कर गया । वहाँ जाकर एक अपूर्व दृश्य देखा । श्री श्री माँ प्राणकुमार बाबू की पत्नी के गले में एक हाथ डालकर दूसरा हाथ कीर्तन की ताल पर हिला रही हैं। प्राणकुमार बाबू की पत्नी के सिर पर आंचल नहीं है । सिर के बाल अस्त–व्यस्त हो गये हैं । आँखें बड़ी–बड़ी हो गयी हैं । आँख और मुँह से एक अस्वाभाविक ज्योति प्रकट हो रही है । एक प्रकार से

उन्मत्त होकर नृत्य कर रही हैं । माँ जिसे स्पर्श कर रही हैं, उसकी यही दशा हो रही है । आज तक जिसे कवि की कल्पना समझता रहा, वही आज वास्तव में परिणत हुआ । भाव संचार शरीररूपी नौका किस प्रकार बेसम्हाल हो जाता है, उसे आज अवाक् होकर देखने लगा । भूलकर भी मन में यह विचार नहीं आया कि इसमें कुछ कृत्रिमता है । प्राणकुमार बाबू की पत्नी को आज सात दिनों से देखता आ रहा हूँ । वे अत्यन्त शान्त प्रकृति की महिला हैं । कभी जबान नहीं खोलतीं। वृद्धा होने पर भी घूँघट काढ़कर चुपचाप सबकी सेवा करती आ रही हैं । वे ही आज इतने पुरुषों के सामने, स्वामी–पुत्र के सामने आत्महारा होकर नृत्य कर रही हैं । यह दृश्य बिना देखे विश्वास नहीं किया जा सकता । इधर माँ तो हास्य का भण्डार वितरण कर रही हैं । एक दिव्य ज्योति से उनकी आकृति उद्भासित है । गीत के प्रत्येक ताल पर हाथ बड़े सुन्दर ढंग से हिला रही हैं । लेकिन माँ में भावावेश तनिक भी नहीं है । भाव कल्लोलित इस जनसमुदाय में केवल माँ की आकृति शान्त और हास्यमयी है ।

सेवादासी अभी तक अज्ञानावस्था में पड़ी रहीं । इधर नृत्य और कीर्तन जब चल रहा था तब अचानक न जाने कहाँ से एक वैष्णवी आकर वीरता के साथ भीषण रूप में हाथ हिलाती हुई नृत्य करने लगी । गोविन्द विग्रह की ओर निष्पन्द दृष्टि से देखती हुई अपने नृत्य से मन्दिर के वातावरण को कम्पायमान कर रही थीं । कभी आगे और कभी पीछे आ–जा रही थीं ।

ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने शची बाबू से कहा–"वैष्णवी की आँखों की ओर देखने को माँ ने आपसे कहा है ।"

शची बाबू मेरे पीछे खड़े थे । दीदी की बात मैंने सुन ली । शची बाबू वैष्णवी की ओर गौर करने लगे । कल रात को इसी दृष्टि की चर्चा हो रही थी । माँ ने कहा था कि त्राटक साधना करने या नाम

के गुणों से आँखों की दृष्टि निस्पन्द हो जाती है । वैष्णवी की आँखें आज जो निस्पन्द हुई हैं, वह शायद नाम के गुण के कारण ही ।

मैंने शची बाबू से कहा–"कहिये, कल रात को त्राटक साधन के बारे में चर्चा होती रही । आज उसे आपने देख लिया !"

शची बाबू ने कहा–"कल साधना के बारे में जितनी चर्चाएँ हुई थीं, आज माँ ने उसे दिखा दिया ।"

कुछ देर कीर्तन होने के बाद माँ नाव पर वापस आने के लिए तैयार हो गयीं । मैंने माँ को कहते सुना–अब मैं चल रही हूँ । मां (अर्थात् सेवादासी) जब उठकर बैठें तब इनसे कहना कि मैं तो अभी यहीं हूँ । इच्छा होने पर माँ मुलाकात कर सकती है ।

माँ चली गयीं । पता नहीं किस वजह से मैं पिछड़ गया । कुछ देर बाद देखा कि सेवादासी उठकर बैठ गयीं । त्रिगुणा बाबू आदि उन्हें प्रणाम कर रहे हैं । मेरी भी इच्छा हुई कि जाकर प्रणाम करूँ। पास जाकर मैंने भी प्रणाम किया ।

वैष्णवी माताजी ने कहा–"बाबा, गोविन्द को मत भूलना ।"

मैंने कहा–"आप यही आशीर्वाद दें ।"

उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा ।

नाव पर आते ही पता चला कि माँ वंशीदास बाबाजी से मुलाकात करने गयी हैं । वंशीदास बाबाजी का अखाड़ा कहाँ है, मुझे पता नहीं । फलतः वहाँ जाने के लिए तैयार नहीं हुआ ।

गंगा में भ्रमण एवं गंगा को फल भेंट करने का उद्देश्य

वंशीदास बाबाजी के अखाड़े से वापस आकर श्री श्री माँ सीधे हमारी नाव पर आयीं । मैं नाव के पिछले भाग पर बैठा था । वहीं से माँ को प्रणाम किया । माँ नाव के सामने बैठीं । खुकुनी दीदी को मेरे पास जाने को बोलीं । अचानक माँ ने मुझसे पूछा–"पिताजी, माताजी (अर्थात् मेरी पत्नी) रो क्यों रही थी ? क्या तुम भी रोते रहे ?"

माँ ने यह प्रश्न क्यों किया, उसका कारण समझ नहीं सका। मेरी आकृति पर विषाद के चिह्न तो शायद नहीं थे । श्री श्री माँ हमारी नाव पर बैठी हुई हैं । खुकुनी दीदी के साथ तरह–तरह की बातें कर रहा था । सच तो यह है कि मैं आनन्द से विभोर था। ऐसी हालत में विषाद कहाँ से आता । लेकिन इधर माँ पूछ रही हैं कि मैं और मेरी पत्नी रोती रही या नहीं ? मैंने कहा–"मुझे कुछ नहीं मालूम ।"

मेरा उत्तर सुनकर माँ हँस पड़ीं, पर कुछ बोलीं नहीं ।

महिलाओं को उपदेश देकर माँ ने उन्हें नाव के भीतर किया। इसके बाद मेरी पत्नी के साथ बातचीत करने लगीं । साधन–भजन के कुछ नियम बताती रहीं । रह–रहकर अन्य नौकाएँ भी हमारी नाव के पास आकर लगने लगीं । जब वे नौकाएँ पास आतीं तब माँ बातचीत बन्द कर देतीं । बाद में उन्हें दूर जाने को कह देतीं । मैं खुकुनी दीदी के साथ बातें करता रहा । अन्य नावों को पास आते देख वे झल्ला उठती थीं । लेकिन माँ के प्रति लोगों का आकर्षण देखकर बीच–बीच में मुस्करा उठती थीं । इस प्रकार हम रेती पर आ लगे । यहाँ भोग का आयोजन किया गया था । नाव से उतरने के लिए माँ उठकर खड़ी हो गयीं । ठीक इसी समय खुकुनी दीदी ने श्री श्री माँ से कहा–"अब तक तुम दीदी से बातचीत करती रही, पर दादा से कोई बात नहीं की ।"

माँ ने कहा–"माताजी से सारी बातें कह चुकी । माताजी अब पिताजी से कहेंगी । इसके अलावा पिताजी को अगर कहना है तो मुझसे कहने पर मैं उसका जवाब दूँगी ।"

मुझे कुछ कहना नहीं है, यह बात माँ अच्छी तरह जानती हैं। माँ की बातों का जवाब न देकर मैंने दीदी से पूछा–"माँ से पूछिये कि माँ नित्य गंगा में घूमने क्यों आती हैं ? गंगा को फल क्यों चढ़ाती हैं ?"

दीदी से मैंने इस बात की चर्चा की थी । भीड़भाड़ के बीच ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते, इसलिए दीदी अवसर ढूँढ़ रही थीं । इस वक्त उन्हें इस बात का स्मरण दिलाते ही दीदी ने माँ से यही प्रश्न किया ।

माँ ने उत्तर दिया–"जब मैं गंगा की ओर आती हूँ तो लगता है जैसे गंगा मुझे बुला रही है ।"

दीदी–गंगा को फल क्यों देती हो ?

माँ–तुम लोग मुझसे फल मांगते हो, क्या ये सब नहीं मांग सकती ?

इतना कहने के बाद माँ नाव पर से उतर गईं । दीदी ने मुझसे कहा–हम लोगों में जानने का आग्रह देखकर माँ कुछ छिपा नहीं रही हैं ।

श्री श्री माँ के हाथ से प्रसाद की प्राप्ति

श्री श्री माँ के साथ–साथ सभी लोग नाव से उतर पड़े । मैं देर तक नाव पर बैठा रहा । सेवादासी के आश्रम में जितनी घटनाएँ हुई थीं, उसके बारे में चिन्तन करता रहा । बाद में नीचे उतरकर माँ की तलाश करने लगा ।

ठीक इसी समय ढाका आश्रम के श्रीयुत अतुल ब्रह्मचारी महाशय ने कहा–"आप अब तक कहां थे ? माँ सभी को प्रसाद खिलाती रहीं । सब समाप्त हो गया ।"

मैंने अतुल दादा से कहा–"मेरे लिए प्रसाद रखा होगा ।"

बहरहाल मैं धीरे–धीरे माँ की नाव के पास जाकर खड़ा हो गया । माँ ने मुझे प्रसाद देने के लिए सन्देश उठाया । मैंने माँ को प्रणाम करने के बाद हाथ बढ़ाकर प्रसाद ग्रहण किया ।

कुछ देर इधर–उधर घूमने के बाद मैंने देखा कि माँ एक अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हैं । मैं वहां जाकर खड़ा हो गया । यह सज्जन अतुल दादा के गाँव के आदमी हैं । वकील हैं । बड़े दिन की छुट्टी में कलकत्ता आये हैं । माँ आजकल नवद्वीप में हैं, सुनकर यहां चले आये हैं । मैं माँ के पास जाकर ज्यों खड़ा हुआ त्योंही देखा कि बेबी दीदी ने संतरे के तीन फांक कर दिये ।

माँ ने हँसकर कहा–"तुम अभी तक रखी रही ?" फिर मेरी ओर देखती हुई बोलीं–"बताओ तो, मैं इन्हें लेकर क्या करूँगी ?"

मैं–बेबी दीदी इसे प्रसाद बना लेना चाहती हैं । तुम इसे मुँह में डालकर प्रसाद बना दो ।

माँ–(हँसकर) यह बात नहीं है । मैं कुछ देर पहले सभी के मुँह में अपने हाथ से प्रसाद डाल चुकी हूँ । तुम्हें नहीं दे सकी थी, इसलिए बेबी दुःख प्रकट करती रही । अब इस समय यह सब तुम्हें खिलाना ही पड़ेगा ।

मैं–माँ, कल रात को मैंने बेबी दीदी को तुम्हारा कृष्ण रूप वाला शृंगार दिखाया था । यह प्रसाद उसी का पुरस्कार है ।

माँ को प्रणाम करने के बाद मैंने प्रसाद ग्रहण करने के लिए मुँह खोला तो माँ ने एक फांक मेरे मुँह में डाल दिया । एक फांक खाकर जब मैं चलने लगा तब माँ ने कहा–"मुझे तीनों फांक खिलानी है ।"

इतना कहने के बाद माँ ने शेष तीनों फांकों को मेरे मुँह में डाल दिया । आज माँ की कृपा ने सभी के हृदय को स्पर्श किया था। कुछ देर बाद श्रीयुत् शची बाबू आये और भीगी रेत पर ही उन्होंने माँ को साष्टांग प्रणाम किया ।

उन्हें इस तरह प्रणाम करते देख माँ ने हँसकर कहा–"तुमने यह क्या प्रारम्भ कर दिया ? अब तो सभी लोग इसी प्रकार जमीन पर गिरेंगे ।"

बात ठीक निकली । शची बाबू की देखा–देखी अन्य लोग भी इसी प्रकार प्रणाम करने लगे । मेरी भी इच्छा हुई, पर शर्म के कारण जमीन पर लेट न सका । मन ही मन माँ को प्रणाम करने लगा ।

कुछ लोग आज चार बजे वाली गाड़ी से चले जायेंगे । माँ ने तुरत भोजन करने की इच्छा प्रकट की । रेत पर श्री श्री माँ, विमला माँ और आनन्द भाई को लेकर भोजन करने बैठ गयीं । बेबी दीदी भोग का आयोजन कर रही थीं । आनन्द भाई बड़े आनन्द से भोजन करने लगे । मैं थोड़ी दूर पर खड़ा यह दृश्य देख रहा था । अचानक सुना कि कोई मेरे बारे में कुछ कह रहा है ।

उधर देखते ही खुकुनी दीदी ने हँसकर कहा–"दादा कुछ नहीं खा सके ।"

इसके बाद माँ के निकट मेरी बुलाहट हुई । माँ ने कहा–"उस समय तुम्हें खट्टा प्रसाद प्राप्त हुआ था । अब तुम्हें मीठा प्रसाद दे रही हूँ । यह रसगुल्ला लो ।"

ज्यों ही मैंने प्रसाद लेने के लिए हाथ बढ़ाया त्योंही माँ ने कहा– "तुम्हारे हाथ पर देने से बेबी रोने लगेगी ।"

फलतः मैंने माँ के पास बैठते हुए अपना मुँह खोला । माँ ने मुझे रसगुल्ला खिलाकर कहा–"तुम्हारा फल भी हुआ और रस भी ।"

मैं माँ की बातें सुनकर चुप रह गया । चिंतन करने की शक्ति मुझमें नहीं थी । इतनी कृपा, इतना आनन्द मेरे जैसा क्षुद्र आधार कैसे सम्हाल सकता है ?

भोजन समाप्त करने के बाद नाव पर आकर बैठ गया । मेरी नाव पर अतुल ब्रह्मचारी के अलावा मैं बैठा था । मेरी लड़कियां पहले इसी नाव पर थीं । लेकिन जब माँ उन्हें खोजने लगीं तब उन लोगों को माँ की नाव पर भेज दिया । श्रीयुत बसन्त कुमार आयन नामक एक सज्जन मेरे साथ लगे हुए हैं । सारा काम-काज आगे बढ़कर कर रहे हैं । आपके साथ परिचय हुआ । आप पहले अगरतल्ला स्थित वन विभाग में नौकरी करते थे । पिछले सात वर्षों से नवद्वीप में हैं। उन्होंने कहा-"मेरी शनि की दशा चल रही है । लगभग १२ वर्ष तक रहेगी । मैंने यह तय किया है कि नवद्वीप में इतने दिनों तक साधुओं का संगत करता रहूँगा । अब तक कितने साधुओं का संगत किया है, यह बताना कठिन है । न जाने कितने साधुओं के साथ इस रेत पर टहल चुका हूँ, पर माँ की तरह किसी को नहीं देखा। माँ ने मेरा नाम 'द्वितीय मथुर' रखा है । मुझे ऐसा लगता है कि मेरा नाम बदलकर माँ ने मेरी शनि की दशा को बदल दिया है ।"

मैंने उनसे कहा-"आप शक्ल-सूरत में हमारे मथुर बाबू से मिलते हैं और उन्हीं की तरह आप कर्मठ हैं ।"

बेबी दीदी ने माँ को भोग देने के लिए आज ८-१० नाव किराये पर ले रखी थी । समस्त नौकाएँ एक साथ बांधकर नदी में छोड़ दी गयीं । शाम को घाट किनारे आने पर माँ ने मुझसे पूछा-"पिताजी, क्या आज तुम शाम की गाड़ी से चले जाओगे ?"

मैं-आप जैसी आज्ञा दें ।

माँ-तुम स्वयं सोचकर देखो कि तुम्हारा कलकत्ता जाना आवश्यक है या नहीं ।

मैं-माँ, जब मैं ढाका में रहता हूँ तब अपने साध्य के अनुसार कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर विचार करता हूँ । लेकिन नवद्वीप में तुम्हारे निकट आकर मैंने 'पुरुषकार' अवलम्बन कर लिया है । अब तुम जो कुछ कहोगी, वही करूँगा ।

माँ ने हँसकर खुकुनी दीदी को मेरे निकट भेज दिया । दीदी ने आकर कहा–"माँ ने मुझे आपके पास भेजा है कि क्या करना होगा, इस विषय पर विचार–विमर्श किया जाय ।"

मैंने कहा–"दीदी, मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं कुछ ठीक नहीं कर पा रहा हूँ । कलकत्ता के इतने पास आकर अगर दादा से बिना मुलाकात किये कलकत्ता चला जाऊँगा तो शायद दादा नाराज हो सकते हैं । सम्भव है कि नाराज न भी हों । दादा असन्तुष्ट हो सकते हैं या नहीं, यह माँ जान सकती हैं, मैं नहीं जानता । फलतः मैं यह कैसे बता सकता हूँ कि मेरा कलकत्ता जाना उचित होगा या नहीं ।"

दीदी ने कहा–"माँ सांसारिक बातों का उत्तर नहीं देतीं । मैं माँ से क्या कहूँगी ?"

मैंने कहा–"आप माँ के पास जायँ । यदि माँ मेरे कर्त्तव्य के बारे में आपसे कुछ पूछें तो आपके मन जो आये, वही कह दीजियेगा ।"

दीदी हँसकर बोलीं–"माँ ने मुझे आपके पास भेजा और आप पुनः मुझे माँ के पास भेज रहे हैं ।"

माँ के पास जाकर जब दीदी ने मेरी समस्या को कहा तब माँ ने कहा–"हां, जागतिक दृष्टि से पिताजी का कलकत्ता जाकर दादा के साथ मुलाकात करना उचित है । पिताजी आज ही रवाना हो जायँ ।"

आदेश तो प्राप्त हो गया, परन्तु माँ को छोड़कर जाने का मन नहीं कर रहा था । लेकिन अब उपाय भी नहीं है । मँझली लड़की को लेकर धर्मशाले से बिछावन वगैरह लाने के लिए चल पड़ा । साथ में एक मल्लाह को ले लिया । स्वामी शंकरानन्द भी एक मल्लाह को लेकर विमला माँ का सामान लेने के लिए चल पड़े । इनका सामान मेरे ही कमरे में था । चूँकि सामान बँधा हुआ था, इसलिए पत्नी को साथ नहीं लिया ।